भगवत् कृपा

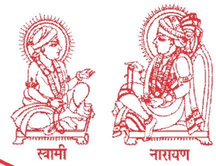

THE DIVINE GRACE

महाप्रभु स्वामिनारायण प्रणीत सनातन, सचेतन और सक्रिय गुणातीतज्ञान का अनुशीलन करने वाली मासिक सत्संगपत्रिका

वर्ष–16, अंक–5 बुधवार, 26 मई' 93	सम्पादक : साधु मुकुंदजीवनदास गुरु ज्ञानजीवनदासजी मई, 1993	वार्षिक चन्दा–30.00 प्रति अंक : 3.00

अमृतसेतु

[हम सब के प्यारे प्रभु प.पू. काकाजी का अमृत महोत्सव (75वीं जन्म जयंती) का महामंगलकारी वर्ष–'1993' चल रहा है.... हमारे भाग्य का तो पार नहीं कि रोम-रोम में भगवान प्रकटाये परम पवित्र पुरुष गरजू बनकर हमारे जीवन में आ गये.... हमें अपनी गोद दी और उनके संग जीवन जीये !!...कैसे ऋण चुका भी पायेंगे इनका?

पू. काकाजी के निम्नलिखित दो आंशिक पत्रों से ही स्पष्ट होताहै कि हमें कैसी भव्य प्राप्ति हुई है....और इनके संबंध में आने के बाद हमें क्या करना है? और इससे भी अधिक–कैसी कल्पना से परे की प्रीति होगी हम सबसे उनकी? कितना अपना माना होगा हमें–जो ऐसा सचोट व स्पष्ट मार्गदर्शन हमारे लिए खुला रख दिया कि आज भी यदि करने लग जायें तो परम सुखी हो जायें व देह रहते हुए अक्षरधाम का सुख-शांति, आनंद प्राप्त करें.....

आईये, हम सब मिलकर इस रहस्य का मनन चिंतन करके समझने का प्रयास करें। इन वाक्यों को अपने जीवन का आधार बना लें ताकि 'अमृत महोत्सव' तक में प्रत्यक्ष गुणातीत स्वरूपों हमारी सब कसर टाल कर हमारी साधना की पूर्णाहुति करा देवें....यही अंतर की आरजु.....]

❑ .....मुझे तो

पू.बापा ने अनुपम ही पसंदगी में चुना था,

सो,

सर्वांगी विकास में और सर्वोच्च ब्रह्मीस्थिति में तकलीफें बाधारूप नहीं बनी

और

मूल रहस्यों गौण नहीं हुए–

अक्षरपुरुषोत्तम उपासना

व

जीव को ब्रह्मरूप करके परब्रह्म में जोड़ने के मूल उद्देश्य में सहज स्थिति व सिद्धि पू. बापा ने दे दी.....

जिससे

सभी भूमिकाओं में अखंड शांति और आनंद रहा....

स्वीट्जरलैंड, 15-7-'77

❑ ❑ ❑

❑ **गुरु** बहुत होते हैं,

परन्तु

❑❑ **सद्‌गुरु** कम।

और

सच्चा सद्‌गुरु तो शायद ही मिले

और

मिल भी जाये तो–

उसके जोग में रहना कठिन।

यदि रहें भी, तो–

अखंड दिव्यभाव रखना कठिन।

वह भी रखें तो–

स्वभाव टाल कर टिकना कठिन।

वह भी कर लें तो–

उसकी अनुवृत्ति में रहना कठिन।

वह भी हो जाये, तो–

उसके अभिप्राय की भक्ति करनी कठिन।

और

वह भी हो, पर–

भिन्न-भिन्न प्रकार के–भिन्न रुचि वाले मुक्तों के साथ

दिव्यभाव ही रखकर–साधुता रखकर

सरलता वर्तना–सर्वोत्तम स्थिति है।

और तब–

पूर्णता ही प्रगटे

और

Final stage सिद्ध हुई मानी जाये।

तो,

यह **एकता व समता** दृढ़ करते जाना।

दूसरा क्या कर रहा है?

वह

जरा भी नज़र में नहीं लेना।

हमें

प्रभु को याद करके

उन्हें ही सब करने देना है।

शिकागो, 12-5-'-77

–प.पू. काकाजी महाराज

❑ शब्द द्वारा परमात्मा के स्वरूप के ज्ञान का उपदेश करे वह गुरु।

❑❑ सभी में परमात्मा का दर्शन कराये वह **सद्‌गुरु**।

अस्खलित निरपेक्ष प्रेम, निर्व्याज वात्सल्य बहाने वाले—सुहृद्सम्राट की जयंती......12 जून......

अहो ! कलियुग में, पृथ्वी पर, बस मात्र संबंध में आने वालों को अक्षरधाम का सुख लुटाने का संकल्प लेकर आई दिव्य विभूति अर्थात् प.पू. काकाजी का प्रागट्य दिन.....12 जून..... नजदीक आ गया। सच ! गुणातीत समाज के मुक्तों के लिए तो अत्यधकि आनन्द करने का दिन; क्योंकि इसी दिन तो हमारे भाग्य उदय करने अनोखी कल्याण की रीत लेकर प.पू. काकाजी धरती पर अवतरित हुए.....ऐसी रीति दुनिया में अब तक किसी ने ना देखी थी, ना जानी थी, ना सुनी थी। इतना ही नहीं बल्कि वे हमारे जैसे ही बनकर, हम सब के परिवार का एक अंग—सदस्य बनकर, हमारी कक्षा पर आकर हम में रसबस हुए....बिना कोई अपेक्षा रखे केवल अपनापन, निःस्वार्थ प्रेम ही लुटाया....अपनी अलमस्त मूर्ति में खींचकर दलदल में धंसे सामान्य जीव को प्रभु की ओर सम्मुख किया....फिर तो उनका प्रागट्य ही हम सब के जीवन की अनमोल निधि है न ?

और.....सच ! अपने आनन्द का तो पार नहीं क्योंकि यह 1993 का वर्ष तो प.पू. काकाजी का 'अमृतपर्व' वर्ष चल रहा है व इस वर्ष के हम साक्षी हैं, इससे बड़ा सौभाग्य क्या ? सो....अमेरिका (शिकागो) में स्थित ब्र.स्व.प.पू. काकाजी के लाडले पू. दिनकरभाई वहाँ पर 11,12,13 जून' 93 के मंगलकारी दिनों में प.पू. काकाजी का 'अमृत महोत्सव' प्र.ब्र.स्व.प.पू. पप्पाजी, प्र.ब्र.स्व.प.पू. हरि प्रसादस्वामिजी की सेरेछाया में मनाने जा रहे हैं।

जब विदेश की धरती पर स्वामिनारायण सम्प्रदाय या गुणातीत समाज से कोई परिचित नहीं था तब वहाँ जाकर सर्वप्रथम प.पू. काकाजी ने ही स्वामिनारायण धर्म—गुणातीत ज्ञान के बीज डाले व सभी स्वरूपों की महिमा गाई—सभी के लिए एक platform तैयार करा और आज उनके अनहद् परिश्रम के फलस्वरूप सत्संग का बगीचा अपना पूर्ण रूप लेकर खिल उठा है.....स्वामिनारायण धर्म को शोभित कर रहा है। सच ! प.पू. काकाजी ने पू. दिनकरभाई के रूप में पात्र भी कैसा चुना? जिनके लिए वे अकसर कहते थे कि 'वह (पू. दिनकरभाई) मुझ से हजारों मील दूर है फिर भी वह मेरे नजदीक है और..... इसीलिए पू. दिनकरभाई जैसे समर्थ माली के हाथों अपना गुणातीत बगीचा सौंपकर निश्चिंत हुए.....और......आज भी उसी रफ्तार से वहाँ सत्संग का विकास हो रहा है।

चूँकि अमेरिका जाना तो सभी मुक्तों के लिए संभव नहीं, सो बम्बई, दिल्ली में भी प्रभुस्वरूप प.पू. काकाजी का 'अमृत महोत्सव' स्थानीय मनायेंगे ताकि मुक्तों सुविधानुसार लाभ ले सकें।

आप सभी की सुविधा हेतु—सूचना :

तीर्थधाम गंगोत्रीरूप ताड़देव, बम्बई में रह रहे प.पू. काकाजी द्वारा तैयार किए हुये नवयोगेश्वरों ने 2,3,4,5 जून'93 को आध्यात्मिक शिविर का आयोजन किया है व 6 जून' 93 रविवार को प.पू. काकाजी महाराज का अमृत महोत्सव मनायेंगे।

इसी तरह....प.पू. काकाजी के कार्यक्षेत्र दिल्ली में माहात्म्य सम्राट प.पू. साहेब की निश्रा में 12 जून'93, शनिवार की शाम को प.पू. काकाजी महाराज की जयंती मनायेंगे.....

सो, जो भक्तों को जिस स्थान पर भी जाने की सुविधा हो वे अवश्य वहाँ पहुँचकर दर्शन, सेवा, समागम का अमूल्य लाभ लेकर स्वयं को धन्य करें.... आप सभी को मित्रमंडल सहित आने का हमारा हार्दिक निमन्त्रण है....

प.पू. काकाजी के अमृतपर्व का उत्सव मनाना, उनके प्रति हमारी भक्ति जरूर है। पर सही अर्थ में वे ऐसे पुरुष थे जिन्हें तत्त्व से जानना मुश्किल। फिर भी इस पत्रिका द्वारा हमने उनके प्रति–अपने भावों से, समझ से उनके जीवन रहस्य को, उनके द्वारा करी रहस्यमयी बातों को प्रस्तुत करने की कोशिश करी है, ताकि वे सभी स्मृतियाँ ताजी हो जाएँ कि उनका हम पर कितना ऋण है ?

प.पू. काकाजी यानि गुरुहरि शास्त्रीजी महाराज, गुरुहरि योगीजी महाराज की योजना को पृथ्वी पर साकार करने आया एक अनोखा दिव्य विग्रह..... धूमकेतु..... जन्म-कर्म सब कुछ दिव्य..... उनकी प्रतिभा, उनका व्यक्तित्व सब कुछ निराला था। बचपन से ही हृदय में अद्‌भुत मस्ती, शूरवीरता, अडिगता, जोश....प्रथम दर्शन में ही गुरुहरि शास्त्रीजी महाराज को भगवान के स्वरूप में पहचाना, स्वीकारा एवं सर्वस्व का समर्पण किया। **प्रत्यक्ष स्वरूप को भगवान के रूप में स्वीकारना और फिर उसके साथ अन्तरायरहित संबंध स्थापित करने का ज्ञान गुणातीत समाज को सर्वप्रथम प.पू. काकाजी ने ही दिया।** गुरुहरि योगीजी महाराज ने स्वयं जिसे अपने स्वरूप की पहचान कराने व स्वयं की दिव्य शक्ति का अनुभव कराने अन्तर की प्रसन्नतारूप साक्षात्कार कराया–उस 'केसरी सिंह' की क्षमता-पात्रता कैसी होगी? और....सच ! वह पात्र यानी प.पू. काकाजी ने ही गुणातीत समाज की स्थापना में सर्वप्रथम पहले अपने सर्वस्व का, धनधाम, कुटुम्ब, परिवार, महत्वाकांक्षा, कीर्ति हर प्रकार की लौकिक-अलौकिक सिद्धि को गुरुचरण में समर्पित कर दिया।

प.पू. काकाजी ने बापा के सत्य स्वरूप का उद्‌घोष किया और स्वरूपनिष्ठा के ज्ञान को फैलाया....स्वरूपनिष्ठा व निर्दोषबुद्धि के गुणातीत ज्ञान को समूह में अखंड बहता रखने ही प.पू. काकाजी का पृथ्वी पर अवतरण था और वह ज्ञान उपदेश देकर नहीं बल्कि स्वयं जीवन जीकर समझाया.....गुरुहरि योगीजी महाराज ने संतों, बहनों, युवकों, गृहस्थों का समाज तैयार करने प.पू. काकाजी का शूरवीर कंधा चुना और उस कंधे पर बन्दूक रखकर गोलियाँ चलाई व प.पू. काकाजी हर क्षेत्र में विजय प्राप्त करके ही लौटे। संकल्प और प्रार्थना से हमारी आत्मा की भूख को जाग्रत किया.....गुरुहरि योगीजी महाराज का माहात्म्य हमारे जीव में भरने जीवन की आखिरी सांस तक रात-दिन गरजु बनकर अविरत लगे रहे.....सच ! प.पू. काकाजी ने बापा का असाधारण माहात्म्य जो समझा, गाया उसके फलस्वरूप ही माहात्म्य के महासागर में दिव्य सुख को हम सब अनुभव कर रहे हैं....बहनों के भगवान भजकर सिद्धदशा प्राप्त कराने कल्याण का द्वार भी इन्होंने खोला। बापा ने ऐसे स्वरूप की हमें मुफ्त में ही मौज दे दी.....इससे भी अधिक बापा के अल्प सम्बन्ध वालों को बापा का स्वरूप मानकर उन्होंने सेवा करी। सही अर्थ में वे निरपेक्ष प्रेम की जीवन्तमूर्ति थे पारदर्शक पुरुष होते हुए भी कईओं के पास बुद्धू बने....और खूब समर्थ होते हुए भी अपना बड़प्पन हमेशा छिपाए रखा....साथी मुक्तगण को ही आगे किया। यद्यपि अपने जीवन में उन्होंने कई अद्‌भुत महान कार्य किए पर प.पू. काकाजी के मुख से कभी किसी ने

नहीं सुना होगा कि 'यह कार्य मैंने अकेले ने किया है।' बस एक ही रटन.....महाराज, शास्त्रीजी महाराज, योगीजी महाराज के प्रताप से और मेरे साथीदारों के सहयोग से हो रहा है।

प.पू. पप्पाजी ने प.पू. काकाजी के पूरे जीवन का सार अपनी इस परावाणी में बताया है–**मैत्रीभाव, सुहृद्भाव, निर्दोषभाव अर्थात् काकाजी। काकाजी यानी सहज आनन्द स्वरूप। 24 घंटे उनकी उमंग, मस्ती जाती ही नहीं थी। अच्छे व बुरे प्रसंगों पर, भयंकर देशकाल आया तब भी उनका जो स्मित.... उनकी जो अलमस्ताई.....वह ऐसी की ऐसी रही और बापा की तरफ अखंडवृत्ति रखकर वे 24 घंटे मस्ती में ही रहे......स्वामिनारायण के अल्प संबंध वालों में भी शास्त्रीजी महाराज को ही देखे और उसके साथ आत्मीयता रखकर अपेक्षारहित सेवा करते ही रहे। काकाजी के सारे जीवन का सार इतने में ही है।**

सचमुच काका किसी के सखा बनकर, किसी के प्रभु बनकर, किसी के गुरु बनकर जीये। पर असल में काकाजी स्वामिनारायण के ही स्वरूप थे। भावात्मक एकता के स्वरूप और प्रवर्तक थे तथा संप, सुहृद्भाव, एकता यह काकाजी का जीवन था। यही कराने का उनका संकल्प व ध्येय था और यह कराये बिना वे रहेंगे नहीं। तो काकाजी का अभिप्राय समझें। उनके जैसा 24 घंटे आनन्द, मस्ती, उत्साह, खुमारी, उमंग कि 'मैं प्रगट प्रभु का हूँ।' ऐसे सुख का उत्साह अखंड रहे।

प.पू. काकाजी आर्षदृष्टा पुरुष थे। उनके माध्यम से भगवान सहजानन्द की चेतना हमारे बीच में प्रगट थी। लेकिन हमारी अस्मिता का कोई स्वरूप, मूल अज्ञान, हमारी रिद्धि-सिद्धि के आवरणों के कारण हम उन्हें पहचान नहीं पाये..... आज जब cassettes वगैरा में उनकी कही बातें सुनते हैं तो लगता है कि अहो हो ! वे हमें क्या देना चाहते थे पर हमने उनकी बातें तब ध्यान से सुनी तक नहीं तो जीवन में उतारने की तो बात ही कहाँ? जब हमारा मन संकल्पों की बीमारी और साम्यावस्थारूप माया से घिरा हुआ था तब उससे छुड़ाने वे हमें बापा के मूलभूत सिद्धान्त संप, सुहृद्भाव, एकता–भावात्मक एकता–दिव्य एकता द्वारा असली गुणातीत अवस्था में ले जाने अनुरोध करते ही रहे...करते ही रहे। परन्तु, हमारा अजाग्रत मन, मायिक दृष्टि केवल प्रभु प्राप्ति के लिए तैयारी ना कर पाई तब उन्होंने हमारे बीच से स्थूल रूप से छलांग मार दी.....लेकिन वे तो आज भी हमारी अन्तरात्मा का साक्षी बनकर, हमारी अपेक्षा-उपेक्षा की परवाह किए बिना अपनी दिव्य रोशनी, मार्गदर्शन, एक सच्चे पिता, गुरु, मित्र, पथप्रदर्शक बनकर दे ही रहे हैं। केवल दिव्यभाव और महिमा के ही अमृतकुम्भ में से धारा निरन्तर बहती रख दी....उनकी महिमा जानने की व गाने की हमारी सामर्थ्य ही कहाँ? उनका उपकार किस प्रकार व्यक्त करें? लेकिन आज भी कई मुक्तों को दर्शन देकर प.पू. काकाजी कहते हैं 'मैं कहाँ गया हूँ?' बस ! अब हमें दिल की सच्चाई से–जाग्रत होकर उन्हें पकड़ना पड़ेगा। सिर्फ उनकी रुचि के अनुसार प्राप्ति की मस्ती में–'मैं किसकी घरवाली?' उनके वचन के मुताबिक, उनके सिद्धान्तों पर चलकर अन्तर की प्रसन्नता पा लें।

1975 में प.पू. काकाजी द्वारा किया गया निम्नलिखित आशीष प्रवचन लेकर भी यदि हम जीने लगें तो दुःख का आभासमात्र भी ना पड़े–अन्तर में सहज आनन्द-आनन्द रहा करे। आईये, इस आशीर्वाद में समायी प.पू. काकाजी की रुचि, रहस्य, अभिप्राय पर मनन-चिन्तन करके उनकी इस आशीष को झेलें व स्वयं को धन्य करें....यही प.पू. काकाजी के ही अमृतपर्व वर्ष में अन्तर की प्रार्थना.......

अन्तःकरण का मौन

पवित्रता, सरलता और शुद्धता से भी बढ़कर है। चाहे कैसा भी जीव हो परन्तु स्वरूप में निष्ठा है वही पवित्रता। वर्ना धर्म-ज्ञान चाहे कितना भी हो लेकिन वह पवित्रता नहीं है। संबंध की एक महिमा है। उनके संबंध से चैतन्य बड़े हैं। एक को 'अच्छा' कहें पर उससे दूसरा 'बुरा' है ऐसा भाव बिलकुल ही नहीं आना चाहिए। स्वरूप की ऐसी महिमा 24 घंटे वर्तन में हो तो ही उसने 'totally' स्वरूप या भगवान माना कहा जाये। भगवान पल में चाहें सो करें। आत्यंतिक कल्याण यानि उसे केवल एक प्रभु की ही वासना। फिर उसे शंका तो नहीं हो, लेकिन सन्देह भी नहीं होता।

हमें जिस कारण देह धारण करना पड़ा वह कसर टली? यह जरूर सोचना। डीस्टील्ड वॉटर इनजैक्शन में काम आता है, पर मरते समय तो गंगाजल ही काम आएगा। 'डीस्टील्ड वॉटर' शुद्ध तो होता है, लेकिन पवित्र नहीं कहा जाएगा। उसके लिए तो गंगाजल ही चाहिए। महाराज का प्रगटीकरण होने से पहले गंगाजल था, पर वह distilled नहीं था। स्वच्छ-निर्मल था सो पीने से प्यास बुझती, ठंडक होती, परन्तु भीतर के खून के कण बदलकर दिव्य नहीं हुए थे, सो संकल्परूपी बीमारी रहती थी। उसे महाराज और गुणातीत ने 'डीस्टील्ड' बनाया, जिससे शुभ संकल्पों का रोग टालकर, सत्यसंकल्परूपी स्वरूपों भगतजी, जागास्वामी और अदा के रूप में प्रगटें। डीस्टील्ड वॉटर गंगाजल बनकर खून के एक-एक कण को पवित्र बनाये वह अत्यंत जरूरी ही है वह श्रीजी महाराज ने बताया।

मंजिल पर तो पहुँच गए, लेकिन पुरानी आदतें बाधारूप ना बनें उसके लिए पवित्रता रखनी जरूरी रही। **पवित्र विचार यानि स्वरूप के कार्य में कोई भी प्रकार का मनुष्यभाव नहीं।** पवित्रता के बाद अखंड धामरूप ही रहना है। बीच समुद्र ही तुम हो।

तुमने स्वामी(बापा) को देखा है?....नहीं। देखा होता तो इन्द्रियों अंतःकरण के भाव उठ ही नहीं सकते। किसी का भी दोष दिखाई ही नहीं पड़े। ऐसे सत्पुरुष के पास जब जाओ तब एकदम खाली–विचारहित होकर ही जाना। लेकिन 150% पक्का है कि तुम ऐसा नहीं ही करने वाले। क्योंकि तुमने मन में ठान ली है कि मैं यही करूँगा और यह नहीं ही करूँगा।'

ऐसा क्यों नहीं होता ? फिर हम कहते हैं कि कौन मिला है ! बस सब वही कर लेंगे। खाना हम खायें और latrine वो जाएँ ? यह नहीं होगा। साधक के लिए तो यह नहीं ही बनेगा। हमें मन को साथ देना ही नहीं है।

निर्विचार : विचार चलते हैं तब तक हम अक्षरधाम में नहीं। फ्यूज उड़ना ही नहीं चाहिए। यदि उड़ जाए तो पाँच मिनिट में वापिस लग ही जाना चाहिए। मान मिलेगा पर उसमें झूलना नहीं। 'No mind land' में–मन-बुद्धि से पर की भूमिका में जब तक नहीं जाओगे तब तक मूर्ति नहीं है।

प्रभु मिले। हरि मिले.....मिले ? तो फिर हँसते रहो। हर प्रसंग पर हंसता हृदय–और हंसता मुँह रखो। एकांतिकभाव सुख-सुख से प्राप्त करना है, इसलिए ये शर्तें पालनी है। 'देखना नहीं, देखना नहीं'–इस भजन में मुझे बदलना है। क्योंकि तुम देखोगे ही। तो करना क्या? हंसो, हंसो, हंसो भाई ! कौन मिला है ! यूँ positive लो, तो उससे पर हो जाओगे।

तुमने आँख से स्वरूप को देखा है, परन्तु आत्मा से आत्मा को देखो। इस बात की आदत

डालनी है। तुम स्वयं परेशानी खड़ी ना करो। खुद ही चाबी बंद करके लुहार को गाली देते हो कि– 'जगत के भी नहीं रहे–स्वरूप के भी नहीं रहे?......यह कैसा कहा जाए? मौज का मूल्य नहीं होता, पर चाबी खो मत दो। मन का मौन रख पाओगे परन्तु अन्तःकरण के मौन नहीं रख पाओगे। 'ब्रह्म होकर परब्रह्म को देखें तब जाने रे..... !' मन से नहीं, बुद्धि से नहीं, चित्त से नहीं, शरीर से नहीं परन्तु तुम्हारे अन्तःकरण के पा के विचार और भावशून्यता के बाद यानि कि मन के मौन के बाद अंतःकरण शांत होने के बाद उसके स्वरूप को देखो, सुनो और पुकारो। यह एकाग्रचित्त से तुमने उसे देखा और सुना। और तब स्वामी की प्र-11 की 167वीं बात के मुताबिक आज ही आत्यंतिक ज्ञान हुआ। जीव में चोट लग गई ! मायिक विचार और मायिकभाव पिघल गया। यह हुआ अंतःकरण, मन और हृदय के पार का ब्रह्म का विचार। और यही सही अर्थ में जुड़े कहा जाए। इसलिए निर्विचार, निर्वितर्क और निर्द्वन्द्व हुए बिना बाहर दिखता हुआ संबंध ही faulty है। मायिक है। केवल तुमने मान लिया है और इसलिए ही महाराज को सिर्फ एक गुणातीत का ही भरोसा आया। सो ही वे अद्वितीय हैं।

व्यक्तित्व को छोड़ दो। उसकी अनुभूति को पकड़ो। वच.ग.प.72 के आखिरी पैराग्राफ के मुताबिक जब तक संकल्प उठते हैं तब तक बीमारी है ही। मूर्ति नहीं है। तुम्हारे अंतःकरण में जो है, उसमें स्वरूप को खींचकर मत ले जाओ। बस, इतना ही कहना है।

दिन में दो बार स्वरूपयोग कर ही लेना, तो मन की और अंतःकरण की शुद्धि हो जाए। इसकी आदत डालना। सोच को पाना, संबंध से ब्रह्मरूप मानना है। यदि ना माना जाए तो ऐसे दो के साथ मैत्री रखो जो तुम्हें दिन में दो बार डाँट कर कहे। यदि ना कहे, तो याद करवाना कि आज तुमने मुझे डाँटा नहीं। 'वे तो इसी के लायक है'–ऐसा मनुष्यभाव तो कभी भी लाना ही नहीं।

हे काकाजी ! आपकी परावाणी में छिपे रहस्य को समझकर आपको अंतर में प्रगटायें......यही प्रार्थना !!

❏ ❏ ❏

ब्रह्मप्रवाह

सीमा

सीमा अर्थात् अंतिम चरण, अंत। गाँव का, घर का, भोग का और समृद्धि का अंत होता है यह ज्ञानी पुरुष अच्छी तरह से जान सकते हैं। अनुमान तथा अनुभवज्ञान से वे संयम वर्तकर सतत् जाग्रतता और सावधानी की दृष्टि कैसे रहे वही अनुसंधान रखा करते हैं, जिससे भगवान या वड़वानल अग्नि समान सच्चे प्रगट संत की आज्ञा व उपासना अखंडित सेवा-भक्ति करते-करते ही अविभाज्यरूप से हुआ करे व भगवान का प्रगट सुख देह रहते हुए ही मिला करे व उसकी प्रतीति भी होती रहे।

स्वामिनारायण भगवान ने इंद्रियों को मंजिल देखकर, खोजकर निचोड़ के रूप नवनीत अनुभव ज्ञान के रूप में और शिक्षापत्री, वचनामृतों तथा अन्य बातों के प्रसंग व विचरण आदि में सभी को स्पष्ट बता दिया और लालबत्ती कायम के लिए रखकर, सत्संगी मात्र को इस लोक व परलोक–

अक्षरधाम में भी अपार सुखी भी कर दिया। अनादिमूल अक्षरमूर्ति गुणातीतानन्दस्वामी ने उसकी सात प्रकरण की जो बात है उसमें अंतःकरण की तथा माया के त्रिगुणात्मक स्वरूप की, महाकरण की तथा साम्यावस्थारूप भगवान की योगमाया की भी सीमा दिखा दी है और जीव का जीवन—सार का सार—उपासना, आज्ञा, एकांतिक का निरंतर संग और भगवदी के साथ सुहृद्‌भाव इन चार बातों में है। यह स्पष्ट बता कर, ब्रह्मरूप कैसे हुआ जाए और सत्तपुरुष के मंगलकारी गुणों, कल्याणकारी भावनाओं व गुणातीतज्ञान कैसे सत्संगी के जीव में देह रहते हुए आये वह मूर्तिमान दिव्यरूप से साक्षात्कार करा के, धाम का सुख बक्शिश में दिया है। माया की भिन्न-भिन्न सीमायें, उनमें आती कठिनाईयाँ व अतर्क्य, अगभ्य अनुभवों अपार पुरुषोत्तम के आकार से दृष्टि और वृत्ति सिखाई यह सभी को विदित है तथा निर्विकल्प-भाव के छठे निश्चय की स्थिति साध्य बना दी है। यही मूळअक्षर की अनिवार्यता सिद्ध करता है।

महाराज भी कहते कि स्त्री व ऋषि का अंत कभी लेना नहीं और जिन देवताओं और अवतारों ने इस बात को थोड़ा भी नजरअन्दाज किया उन सभी को कलंक लगा व नारदजी तथा भरतजी जैसों को भी स्थिति में से डगमगा दिए हैं। सो, आत्मा का स्वधर्म और अनिवर्चनीय सनातन स्वभाव प्रगट सत्पुरुष के द्वारा साधकर मूर्तिमान सच्चिदानंदरूप का अनुभव करना, भोगना और प्राप्त कर लेना चाहिए। गोंडल अक्षरदेरी में मन की, चित्त की, ऐश्वर्यों की, सत्ता—सामर्थ्य की, सिद्धियों की सभी सीमायें गुणातीत के चरणों के पास विलीन हो जाती हैं। वही आखरी मंजिल है, सीमा है, जहाँ सम्पूर्णता—ब्राह्मीस्थिति साध्य बनती है और प्रकृतिभाव भूलकर, सहजभाव से ही अक्षररूप होकर पुरुषोत्तम के प्रगट स्वरूप में निरंतर जुड़ जाते हैं व एकत्त्व का अनुभव करके, उसका दिव्यानंद—स्वभाविक सहजानंद अन्य को भी देकर प्रतीति के रूप में साथ वालों को भी अपार सुखी कर देता है।

पशुओं और मानवों के बीच का जो महाभेद वही मनतत्त्व और बुद्धितत्त्व के प्रगटीकरण की विशिष्टता है। उसमें ज्ञान की—जीवन की; आत्मा की और जगत की तथा माया के स्वरूपों के संबंधों की सीमायें ही ढूँढनी हैं व सच्चे स्वरूपों, गुणों—लक्षणों को पहचान कर देह रहते हुए ही दिव्य जीवन प्राप्त करना है। ऐसी सीमाएँ और पुरुषार्थ की प्राप्ति तथा पूर्णता की परिसीमा प.पू. गुरु श्री योगीजी महाराज प्राप्त करवा सकते हैं। इसलिए, जिन्दगी का आखिरी अंत क्या? ज्ञान, भक्ति—वैराग्य, धर्म, आत्मनिष्ठा का अंत क्या? जगत का तथा इन समग्र भावनाओं और संबंधों का अंत क्या? वह स्पष्ट समझकर, जानकर, प्राप्त कर लेने हरेक को साधु का समागम कर लेने हरेक को साधु का समागम कर लेने की आवश्यकता है। अक्षरदेरी में एक आधे महीने का ही सतत् समागम रखकर अपार सुख, शांति, आनंद और सद्‌गुणों को प्राप्त करके, सहजभाव से दिव्य जीवन बना लेने की जरूरत है। ऐसा अमूल्य अवसर, मौका फिर दोबारा मनुष्य देह में नहीं ही मिले। इसलिए करोड़ों काम बिगाड़ कर भी ऐसा आत्यंतिक मोक्ष, कल्याण पा लेने की हर सत्संगी की फर्ज है। आत्मा-अनात्मा की ऐसी सीमा महाराज व स्वामी के सिवा और कहीं वृत्ति या दृष्टि नहीं रहे तब आयेगी और मलिन विचार भावना-संकल्पों सदंतर बंद होकर, विक्षेपों, कल्पना, शंका-आशंका, अधूरापन मिट जाएगा, अखंड अहोहोभाव रहेगा और भक्तों की सेवा दासभाव से

हुआ करेगी।

गुरुवर्य योगीजी महाराज ऐसी अलौकिक स्थिति सभी सच्ची निष्ठा वाले हरिभक्तों को कराएँ यही नम्र प्रार्थना है। तभी संघनिष्ठा की महासीमा दीप से दीप प्रगटा कर अनंत दीप, ज्योतियाँ सत्संग में प्रगटायेंगी और प.पू. शास्त्रीजी महाराज की अपार महिमा माहात्म्य का दिव्य सुख सारी मानवजाति को आसान बनेगा तथा गुणातीत ज्ञान ब्रह्मांड में फैलेगा व सर्व जीव प्राणी मात्र को अपार सुखी कर देगा। ऐसे दिव्य रत्नों अधिक से अधिक बढ़े और महामुक्तों द्वारा विजय ध्वज–अक्षरपुरुषोत्तम के सर्वोपरि सनातन अनादि सत्य श्रेष्ठ ज्ञान की प्रवृत्ति सभी का मंगल करे, कल्याण करे–यही अभ्यर्थना।

–प.पू. काकाजी महाराज

नवम्बर, 1953

❋ ❋ ❋

स्वामी की बातें

279. ....जो अंतर पकड़े उसे भगवान कहते हैं। तब हरिशंकरभाई ने पूछा कि अन्तर पकड़ा कैसे समझना? तब उत्तर किया कि स्वयं की मूर्ति में जीव को खींच ले व उसका दोष जानकर उसी पर बातें करके दोष टाल दे–वह अन्तर पकड़ा कहा जाता है।

प्र–5,12

280. भगवान हमारी घरवाली को जबरदस्ती ले जायें व हमारे लड़के को भी ले जाए और तब भी भगवान में दोष ना देखें, उसे स्वरूप का ज्ञान हुआ जानना व ऐसे का मोक्ष हो चुका।

प्र–5,13

281. शुकमुनिजी ने सूरत में बात की थी कि गुणातीतानन्दस्वामी बातें करते हैं उससे महाराज की बातों जैसा समाधान होता है।

प्र–5,14

282. 'भोगावा' नदी के किनारे गर्मी में कोई तप करता हो, वह नर्क में जाये, परन्तु भगवान का आसरा हो और उसे चाहे सात लड़के हों–अर्थात् गृहस्थी हो तब भी उसका परिवार समेत मोक्ष होता है। यह बात सभी को समझ में नहीं आयेगी।

प्र–5,15

283. अधिक जनों के शब्द सुनें तो द्विधा होती है और बुद्धि में शंका होती है। सो ज्यादा शब्द सुनने नहीं।

प्र–5,16

284. नामी के बिना केवल नाम जपने से काम नहीं होता। नाम वह फूल है और नामी वह फल हैं।

प्र–5,17

285. 'जहाँ पहरा हो वहाँ कोई आ नहीं सकता'– इस उदाहरण का अर्थ यह है कि माहात्म्य जानकर बड़े साधु के संग जीव जोड़ दिया हो तो उससे यदि उसे दूर जाना भी पड़े, तो भी उस साधु के विरुद्ध विषय भोग नहीं पायेगा और विषय उसे काबू नहीं कर पायेंगे।

प्र–5,18

286. बड़े साधु के समागम से विषय टल चुके हैं, फिर भी लगता रहता है कि टले नहीं है। उसका

कारण यह है कि तलवार में यदि थोड़ा-सा जंग लग गया हो तो पत्थर पर घिसने से उतर जाता है, परन्तु यदि बहुत अधिक जंग लग गया हो तो वह हटता नहीं। वह तो दोबारा तलवार के लोहे को पूरा गलाया जाए तब मिटता है। वैसे इस जीव में विषय के जो धब्बे पड़ गए हैं वह तो देहभाव छोड़ ब्रह्मरूप होंगे तब टल जायेंगे।

प्र–5,19

287. ये साधु तो हमेशा भगवान के हजूर में रहने वाले हैं उनसे पलभर भी दूर रहें ऐसा नहीं। और तब भी रहे हैं वह तो जीव के कल्याण के कारण रहे हैं तथा इस समय जो बातें होती है वैसी बातें दूसरे साधु सारे जन्म में भी नहीं कर सकते–करनी आएगी भी नहीं व सारे जन्म तक कोशिश करें तब भी ऐसी बातें करनी सीख नहीं पाएँ।

प्र–5,20

❑ ❑ ❑

व्रतोत्सवसूची

1.	दि.	30.5.93	रविवार	भगवान स्वामिनारायण का स्वधामगमन दिन
2.	दि.	31.5.93	सोमवार	भीम एकादशी, निर्जला व्रत
3.	दि.	1.6.93	मंगलवार	प्र.ब्र.स्व.प.पू. पप्पाजी महाराज का दृष्टा दिन, गुणातीत ज्योत स्थापना दिन
4.	दि.	4.6.93	शुक्रवार	पूर्णिमा
5.	दि.	12.6.93	शनिवार	प्र.ब्र.स्व. प.पू. काकाजी महाराज की जयंती अशोकविहार स्वामिनारायण मंदिर शाम को अनिर्देश में मनायेंगे।
6.	दि.	16.6.93	बुधवार	योगिनी एकादशी, व्रत

PUBLISHED BY SADHU MUKUNDJIVANDAS FOR YOGI DIVINE SOCIETY,
A 103, Ashok vihar-III, Swaminarayan Marg, Kakaji Lane,
Delhi-110 052. (India) Tel. : 7229327, 7249327
Printed at R.P. Printers, Shahdara, Delhi-110 032